Course	:	B.Ed, Part-II
Paper	:	XVI (सामाजिक विज्ञान का अध्ययन) **Pedagogy of Social Science**
Prepared by	:	Dr. Pallavi
Topic	:	भू-आकृति विज्ञान की अवधारणा **(Fundamental Concepts of Geomorphology)**

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत पाठ सामाजिक का प्रथम इकाई हैं। सामाजिक अध्ययन विषय के अंतर्गत कला विषयों का समावेश होता हैं। इसके अंतर्गत भूगोल, इतिहास, अर्थव्यवस्था, राजनीतिशासत्र आदि विषयों का अध्ययन होता हैं। प्रस्तुत पाठ में भूगोल विषय से संबंधित है। इसके अंतर्गत भूगोल के महत्वपूर्ण बिंदु यथा भू-आकृति विज्ञान, अक्षांश एवं देशांतर, पृथ्वी की गतियाँ, जलवायुविक विभाजन, तापमान, वायु, वायुदाब, आर्द्रता आदि की जानकारियाँ दी जा रही है। इसके अलावा जलमण्डल तथा समुद्र-विज्ञान के बारे में भी जानकारियाँ भी विषय को समझने के दृष्टिकोण से अपरिहार्य है। अतः आशा है, इस पाठ को पढ़कर शिक्षार्थीगण अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

1.2 भू-आकृति विज्ञान की अवधारणा (Concepts of Geomorphology) :

भू-आकृति विज्ञान भूगोल की एक महत्वपूर्ण शाखा ''भौतिक भूगोल'' की मुख्य शाखा है। इसके अंतर्गत पृथ्वी के धरातल पर पाये जाने वाले स्थलीय रूपों यानि स्थलाकृतियों की उत्पत्ति, उनके विकास का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। वास्तव में, भू-आकृति विज्ञान, जिसे ग्रीक भाषा में जियोमॉरफॉलोजी (Geomorphlogy) कहते हैं, का अर्थ है पृथ्वी के रूप का विवरण। इस शब्द जियोमॉरफोलोजी का विन्यास ग्रीक भाषा के "Ge" यानि पृथ्वी (Earth), Morphe यानि रूप (Form) तथा Logos यानि विवरण (Discourse) से हुआ है अर्थात Ge+Morphe+Logos = Geomorphology। अतः हम कह सकते हैं कि भू–आकृति विज्ञान, पृथ्वी के रूप का सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध विवरण है। इसमें हम मुख्य रूप से स्थलरूपों का अध्ययन करते हैं। भू-पटल के स्थलरूप तथा सागरीय तल के विभिन्न रूपों, उनकी उत्पत्ति आदि की व्याख्या का अध्ययन करते हैं। यहाँ पृथ्वी या भूपटल के प्रमुख उच्चावच यानि महाद्वीप, महासागर, पर्वत, पठार, मैदान इत्यादि भी इसमें सम्मिलित हैं। उपरोक्त सभी की उत्पत्ति तथा व्याख्या तभी संभव है, जब हमें पृथ्वी की संरचना, चट्टानों की बनावट, ऋतुक्षरण तथा अपरदन की प्रक्रियायें, पटल-विरूपण (Diastrophiom) ज्वालामुखी क्रिया (Volcanism), प्लेट विवर्तनिकी (Platetectonics), महाद्वीपीय विस्थापन इत्यादि का ज्ञान हो, क्योंकि पृथ्वी का घरातलीय रूप इन्हीं तत्वों से प्रभावित और परिवर्तित होता रहता हैं। अतः उपरोक्त सभी विषयों का अध्ययन भू-आकृति विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। सामान्य रूप से, हम पृथ्वी की उच्चावच आकृतियों के आकार के आधार पर तीन प्रमुख वर्गो में विभाजित कर सकते हैं।

1.2.1 प्रथम श्रेणी के उच्चावच आकृतियाँ (Relief features of the first order)

इसके अंतर्गत भू–पटल की दो प्रमुख स्थलाकृतियाँ, यथा-महाद्वीपीय प्लेटफॉर्म (Continental Platform) और महाद्वीपीय बेसिन (Ocean Basins) आती हैं। देखा जाए तो महाद्वीपों तथा महासागरों की प्रकृति स्थिर प्रतीत होती हैं। परन्तु पृथ्वी के भू–वैज्ञानिक इतिहास को देखा जाए, तो इसमें बहुत से परिवर्त्तन के प्रभाव मिलते हैं।

1.2.2 द्वितीय कोटि की उच्चावच आकृतियाँ (Relief features of the second order) :

इसके अंतर्गत पृथ्वी के आंतरिक बलों (Endogenetic forces) द्वारा उत्पन्न स्थलाकृतियों जैसे पर्वत, पठार, मैदान, जलाशय आदि के साथ महासागरीय तल की स्थलाकृतियों का भी अध्ययन किया जाता हैं। इन स्थलाकृतियों को रचनात्मक स्थलरूप (Constructional features) कहते हैं।

1.2.3 तृतीय कोटि की उच्चावच आकृतियाँ (Relief features of the third order)

इस प्रकार की स्थलाकृतियों का निर्माण पृथ्वी की बाह्य शक्तियों (External or Exogenetic Forces) द्वारा अपक्षय, अपरदन एवं निक्षेपण (Weathering, Erosion and Deposition) द्वारा होता हैं। पृथ्वी के बाह्य शक्तियों में आने वाले कारक तत्व वायुमंडल से उत्पन्न जल, सरिता, सागरीय जल, भूमिगत जल, पवन, हिमनद एवं परिहिमानी इत्यादि आता हैं। अर्थात् अनाच्छादनात्मक प्रक्रम (Denudational Processes) से निर्मित स्थलाकृतियों का अध्ययन किया जाता हैं।

हाँलाकि भू-आकृति विज्ञान का वर्त्तमान रूप पिछले कुछ शताब्दियों में हुए क्रमिक विधितंत्रतात्मक (Methodological) विकासों की वजह से हो पाया हैं। आधुनिक भू-आकृति विज्ञान का प्रारंभ स्कॉटिश भूगर्भवेत्ता **जेम्स हट्टन** (James Hutten, 1726 से 1797 ई०) को माना जाता है। इन्होंने प्रकृति में **एकरूपतावाद (Uniformiterianism)** की संकल्पना को जन्म दिया। इसके बाद क्रमशः भू-आकृति विज्ञान का उत्तरोत्तर विकास होता गया। आज भूआकृति विज्ञान किसी भी प्रदेश के स्थलरूपों का अध्ययन तथा व्याख्या करने में काफी हद तक सफल हो रहा हैं। आज किसी भी स्थलरूपों का अध्ययन तीन सारणियों में होता है– (i) स्थलरूपों का वर्णन (व्यक्तिनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ वर्णन) (ii) वर्गीकरण (अजननिक या परिमाणात्मक वर्गीकरण तथा जननिक वर्गीकरण) एवं (iii) स्थलरूपों की व्याख्या (यह मुख्यतः दो रूपों में की जा सकती हैं– (a) विकास उपगमन या कालानुक्रम अनाच्छादन (इसके अंतर्गत स्थलरूपों के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया जाता है) तथा प्रक्रम रूप उपगमन (जिसके अंतर्गत प्रक्रम तथा स्थलरूप के मध्य संबंधों का अध्ययन किया जाता हैं। प्रथम उपगमन, संवृत तन्त्र (Closed System) का उदाहरण हैं तथा द्वितीय उपगनम विवृत्त तंत्र (Open System) का उदाहरण है । इस प्रकार, हमने भूआकृति-विज्ञान को संक्षिप्त रूप में जाना। अब, हम इस पाठांश को आगे बढ़ाते हुए अक्षांश एवं देशांतर को जानेगें।

1.3 अक्षांश एवं देशातर रेखाओं की संकल्पना (Concepts of Latitudinal and Longitudinal Lines)

विद्यार्थियों को इस बात की जानकारी होगी कि विभिन्न स्थानों की स्थिति, दूरी एवं दिशा के मध्य संबंधों को निर्धारित करने के लिए भौगोलिक निर्देशांक बहुत-ही आसानी से संदर्भ-बिंदुओं का कार्य करते हैं। इन संदर्भ-बिंदुओं के निर्माण हेतु भूपटल पर अक्षांश एवं देशांतर रेखाओं का काल्पनिक जाल का निर्माण किया गया है, जिसकी मदद से मानचित्र का निर्माण किया जा सकें तथा विभिन्न स्थानों की स्थिति, दूरी एवं दिशा का पता लगाया जा सकें। इसी की सहायता से पृथ्वी की सतह पर भौगोलिक निर्देशांकों का जाल बिछाया गया। इसके आधार पर X और Y अक्षों की सहायता लेकर रैखिक ग्राफ खींचा जाता हैं। 'X' रेखा की परिकल्पना एक क्षैतिज रेखा (Horizontal Line) के रूप में तथा 'Y' रेखा की परिकल्पना रैखिक या ऊर्ध्वाधर रेखा (Vertical Line) के रूप में की गई। इसमें क्षैतिज समानांतर रेखाओं को अक्षांश (Latitude) रेखाएँ कहते हैं तथा ऊर्ध्वाधर समानांतर रेखाओं को देशांतर रेखाएँ (Longitude) कहते हैं और अक्षांश एवं देशांतर रेखाओं के जाल को ही भौगोलिक निर्देशांक कहा जाता हैं।

1.3.1 अक्षांश रेखाएँ (Latitude) :

ग्लोब कर किसी स्थान तथा भूमध्य रेखा के मध्य याम्योत्तर या ध्रुववृत्त (Meridian) के चाप की अंशों में मापी गई कोणीय दूरी (angular distance) को उस स्थान का अक्षांश कहते हैं और पृथ्वी रूपी गोले के उत्तरी तथा दक्षिणी भाग में बांटने के लिए बीचों-बीच जिस रेखा को खींचा जाता है, उसे भूमध्य रेखा अथवा विषुवत रेखा (Equator) कहा जाता हैं तथा उसके समानांतर (Equidistante) दोनों गोलार्द्धों में ध्रुववृत्तों (Meridian) को अक्षांश

रेखाएँ या अक्षांश वृत्त (Parallel of latitude) के नाम से जानते हैं। भूमध्यरेखा के उत्तर या दक्षिणी गोलार्द्ध में 0° से 90° के मध्य किसी भी मान का अक्षांश वृत्त बनाया जा सकता है। विषुवत् रेखा वह प्रारंभिक रेखा है, जिससे अन्य अक्षांशों को गिना जा सकता है। यह 0º अक्षांश रेखा है । प्रत्येक ध्रुव की विषुवत् रेखा से कोणात्मक दूरी 90º है। इसी कारण दोनो ही गोलार्द्धो में अक्षांश रेखाओं की संख्या 90° हो जाती है। चूँकि सभी अक्षांश रेखाएँ विषुवत रेखा के समांतर होते हैं, अत: इन्हें समांतर रेखाएँ भी कहते हैं।

अक्षांश का अर्थ किसी स्थान की विषुवत रेखा से कोणीय दूरी है। किसी स्थान को सही स्थिति (Location) जानने के लिए यह जाना आवश्यक है कि वह किस विशिष्ट अक्षांश पर स्थित हैं।

1.3.2 देशांतर रेखाएँ (Latitude) :

जिस प्रकार अक्षांश रेखाऐं पृथ्वी रूपी ग्लोब पर क्षैतिज रेखाओं के रूप में होती हैं, उसी प्रकार देशांतर रेखाएँ उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों को मिलाने का कार्य करती है। ये रेखाएँ अक्षांश रेखाओं को कई भागो में बाँटती हैं और इनकी मदद से हम किसी स्थान की सही स्थिति मालूम कर सकते हैं। देशांतर रेखाएँ, अक्षांश रेखाओं की तरह समांतर नही होती हैं। ग्लोब पर देशांतर रेखाओं की कुल संख्या 360 हैं। किस देशांतर रेखा को प्रारंभिक माना जाए, जिसके आधार पर अन्य देशांतर रेखाओं की गिनती की जाए, यह एक समस्या आन पड़ी। तब सन् 1884 ई० में एक अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठी में यह निर्णय लिया गया कि लंदन के समीप स्थिति ग्रिनिच रॉयल प्रेक्षणशाला (Greenwich Royal Observatory) से गुजरने वाली देशांतर रेखा को 0º देशांतर मान लिया जाए। इसका नाम प्रधान मध्याह्न रेखा भी रखा गया। इस 0º देशांतर रेखा के आधार पर अन्य देशांतर रेखाओं की पूर्व अथवा पश्चिम की ओर गणना की जाती है। देशांतरों का मान प्रमुख देशांतर (ग्रिनिच देशांतर) के पूर्व अथवा पश्चिम की ओर 0º से 180º तक होता है । आजकल सभी देश अपने यहाँ की देशांतर रेखाओं का संख्याकन प्रधान मध्याह्न रेखा के संदर्भ में ही करते हैं । 0° से 180° तक पूर्व में स्थित देशांतरों का भाग पूर्वी गोलार्द्ध तथा 0° से 180° तक पश्चिम की स्थिति को पश्चिमी गोलार्द्ध के नाम से जाना जाता हैं। हम जानते हैं कि देशांतर रेखाओं की संख्या 360° है। अत: 0º देशांतर से 180º देशांतर समाप्त समझा जाए तथा 180º के बाद उनका संख्या क्रम उलट दिया जाए। उदाहरणार्थ, पूर्व दिशा में चलने पर देशांतर बढ़ते क्रम में 0º से 180º तक है और 180º से 0º तक देशांतर घटते क्रम में है। यही स्थिति 0º देशांतर से पश्चिम चलने पर होगा। इस प्रकार किसी स्थान की सही स्थिति बताई जा सकती हैं।

1.4 पृथ्वी की गतियाँ एवं तापमान (Earth Movements and Temperature) :

सौर-मण्डल में सूर्य के चारों ओर सभी ग्रह परिक्रमा (Revolution) कर रहे है तथा पृथ्वी इस परिवार का चौथा निकटतम ग्रह है तथा पांचवा बड़ा ग्रह हैं। अन्य ग्रहों की भाँति पृथ्वी भी सूर्य से तापमान एवं प्रकाश ग्रहण करती है, जो जीवजगत् के लिए आवश्यक है। पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह चन्द्रमा है, जो पृथ्वी की परिक्रमा करता है। सूर्य अपने ही स्थान पर स्थित होकर अपनी धुरी पर परिभ्रमण (rotation) करता है तथा पृथ्वी अपने अक्ष पर परिभ्रमण (rotation) करते हुए, सूर्य की परिक्रमा (revolutioin) करती हैं। इस प्रकार सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्रमा की अनेक सापेक्ष स्थितियाँ एवं गतियाँ होती हैं, जो धरातल पर दिन व रात का होना, ऋतु परिवर्तन, ज्वार भाटा, सूर्य ग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि परिघटनाओं (Phenomena) को जन्म देती है। चन्द्रमा पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह हैं, जो उसका निकटतम खगोलिय पिण्ड हैं। यह अपने गुरूत्वाकर्षण से पृथ्वी की जल राशियो में ज्वार उत्पन्न करता हैं।

पृथ्वी निरन्तर अपने अक्ष (axis) पर घूमती रहती हैं। हम प्रात:काल में सूर्य को उगता हुआ देखते हैं, दोपहर में यह हमारे सिर पर होता हैं तथा शाम को पश्चिम में अस्त होता है। वास्तव में सूर्य स्थिर रहता है तथा पृथ्वी गतिशील। पृथ्वी की दो गतियाँ होती हैं– (1) घूर्णन (rotation) या दैनिक गति तथा (2) परिक्रमण (revolution) या वार्षिक गति। पृथ्वी पर विषुवत रेखा के उत्तर अथवा दक्षिण की ओर बढ़ने पर तापमान में क्रमश: अंतर आता जाता है ।

1.4.1 घूर्णन (Rolation) :

पृथ्वी एक लट्टू की भांति अपने अक्ष (axis) पर घूमती है। अक्ष वह काल्पनिक रेखा है, जो पृथ्वी के केन्द्र एवं उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों को मिलाती हैं। पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर लगभग 24 घंटों में एक चक्कर पूरा करती हैं। जिससे एक दिन तथा रात होता हैं। यह पृथ्वी की दैनिक गति कहलाती है। पृथ्वी के घूर्णन से निम्न प्रभाव होता हैं–

(i) **दिन-रात का होना :** सूर्य पृथ्वी के प्रकाश एवं उष्मा प्रदान करता है। पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सामने होता है, वह प्रकाशमान तथा पिछले के भाग में अंधकार रहता है। पृथ्वी के घूर्णन के कारण बारी-बारी से पृथ्वी का प्रत्येक भाग सूर्य के सम्मुख आता जाता हैं और इसलिए सूर्य के सम्मुख वाले भाग में दिन तथा विपरीत भाग में रात होती हैं।

(ii) **समय का माप :** पृथ्वी के घूर्णन से समय की माप का पैमाना प्राप्त हो सका हैं। 24 घण्टों में एक घूर्णन पूरा करने की अवधि एक दिवस कहलाती हैं।

(iii) **दिवस के भिन्न काल :** पृथ्वी के घूर्णन के कारण दिन के विशिष्ट अवसरों पर प्रातः माध्याह्न (दोपहर), सायं एवं मध्य रात्रि काल आते हैं।

(iv) **ग्लोब पर किसी स्थान का स्थिति निर्धारण :** पृथ्वी के घूर्णन से ग्लोब पर विशिष्ट बिंदु एवं रेखाओं की कल्पना का आधार प्राप्त किया गया है। पृथ्वी के अक्ष का ऊपरी सिरा उत्तरी ध्रुव एवं निचला सिरा दक्षिणी ध्रुव कहलाता हैं। दो ध्रुवों के मध्य ग्लोब के मध्य से गुजरने वाले वृत्त को 'विषुवत रेखा' (equator) कहते हैं।

(v) आकाश में ग्रहों का पूर्व से पश्चिम की ओर घूमते हुए प्रतीत होने का कारण की पृथ्वी का घूर्णन गति हैं।

(vi) दैनिक ज्वार भाटों में समय का अंतर भी यही हैं।

(vii) दैनिक घूर्णन ही प्रचलित पवनों तथा समुद्री धाराओं की दिशा पर भी प्रभाव डालता हैं।

1.4.2 परिक्रमण (Revolution)

पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमते हुए अपनी कक्षा (Orbit) पर सूर्य की परिक्रमा करती हैं। यह कक्षा अण्डाकार है और सूर्य इस अण्डाकार मार्ग के मध्य न होकर एक ओर स्थित हैं। अतः इस मार्ग से परिक्रमा करते हुए पृथ्वी वर्ष में एक बार सूर्य के निकटतम तथा एक बार दूरतम होती है। पृथ्वी अपने परिभ्रमण की ही दिशा में सूर्य की एक परिक्रमा 365¼ दिन में पूर्ण करती हैं। इस अवधि को एक वर्ष (Year) कहते हैं। परिक्रमण पृथ्वी की वार्षिक गति हैं। परिक्रमण के प्रभाव निम्नलिखित हैं :–

(i) **अयन वृत्तों का निर्धारण :** पृथ्वी के अपने अक्ष पर 23½° झुकाव के कारण, परिक्रमण के समय भूमण्डल के स्थानों की स्थिति सूर्य के सापेक्ष में बदलती रहती है। सूर्य पृथ्वी के उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्धों में 23½º अंक्षाशों तक ही लम्बवत् चमक जाता है, जिसे हम कर्क एवं मकर रेखा के नाम से जानते हैं।

(ii) **ध्रुव वृत्तों का निर्धारण :** उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों पर 24 घंटे के दिन एवं रात होते हैं।

(iii) **मध्याह्न के समय सूर्य की ऊँचाई में अंतर :** भूमण्डल के अलग-अलग स्थानों पर मध्याह्न कालीन सूर्य की ऊँचाई भिन्न होती हैं।

(iv) **दिन व रात की लम्बाई में अंतर :** पृथ्वी के अपने अक्ष पर झुके होने तथा परिक्रमण गति के कारण अलग-अलग स्थानों पर दिन व रात की लम्बाई में अंतर पाया जाता है। यहाँ तक की वर्ष के अलग-अलग महीनों तथा दिनों में भी यह अंतर पाया जाता है। केवल विषुवत रेखा पर दिन-रात की लम्बाई सदैव बराबर रहते हैं।

(v) **ऋतु परिवर्तन :** ऋतु का निर्धारण ताप ग्रहण के आधार पर होता है और ताप की मात्रा प्रकाश प्राप्ति के आधार पर निर्भर करती है। पृथ्वी के अक्षीय झुकाव तथा परिक्रमण के कारण पृथ्वी की सूर्य से सापेक्ष स्थितियाँ बदलती रहती हैं, जो ऋतु परिवर्तन का कारण है।

अब हम जलवायुयिक विभाजन को जानेंगे।

1.4.4 तापमान (Temperature)

तापमान, जिसका प्रधान स्त्रोत सूर्य है, वायुमण्डलीय ताप के लिए अत्यधिक आवश्कय है। वायुमण्डल सूर्य तथा पृथ्वी से अलग-अलग रूपों में ताप ग्रहण करता हैं। वायुमण्डल के गर्भ तथा शीतल होने की क्रियाएँ मुख्य रूप से सीधे सौर्यिक विकिरण के प्राप्त ऊर्जा द्वारा पृथ्वी से परिचालन (Conduction), संवहन (Convection), तथा विकिरण (radiation) की विधियों से सम्पादित होता हैं।

1.4.4 सूर्यताप से प्रत्यक्ष वायुमण्डल का गर्म होना (Atmosphere Heated Directly Through Sunlight) :

सूर्य से ऊर्जा का विकिरण लघु तरंगों के रूप में होता हैं। वायु मण्डल में स्थित जलवाष्प आदि द्वारा सौर्य ऊर्जा का 14% प्रतिशत अवशोषण (Absorption) से ग्रहण कर लेता है। इस कुल ऊर्जा का 7 प्रतिशत वायुमण्डल के निचले भाग में 2 कि०मी० की ऊँचाई तक फैल जाती हैं। इस न्यून मात्रा के ताप द्वारा वायुमण्डल का गर्म होना अधिक महत्वपूर्ण नहीं होता हैं।

1.4.5. परिचालन (Conduction)

परिचालन क्रिया के अंतर्गत एक अणु स्पर्श द्वारा दूसरे अणु को उष्मा प्रदान करना है या ग्रहण करता है। यह क्रिया तब तक चलती रहती है, जबतक वस्तुओं के तापक्रम में विभिन्नता होती है। इस नियम के अंतर्गत, जब दिन में पृथ्वी की ऊपरी सतह सौर्यिक विकिरण से उष्मा प्राप्त करके अधिक गर्म हो जाती है, तो उसके सम्पर्क में आने वाली वायु में धरातल से ताप का गमन होने लगता है, जिससे हवा गर्म होने लगती हैं।

1.4.6 विकिरण (Radiation)

कोई भी वस्तु एक निश्चित तापमान पर विभिन्न प्रकार की उष्मा-तरंगे प्रसारित करती है, जिसे विकिरण कहते हैं। विकिरण करने वाली वस्तु के आकार तथा तापमान पर उस वस्तु विशेष से निकलने वाली तरंगों का रूप लघु या दीर्घ होता है। पृथ्वी सौर्यिक विकिरण द्वारा प्रसारित ऊर्जा का 51% भाग प्राप्त करती है। यह ऊर्जा उष्मा में बदल दी जाती है। उष्मा प्राप्त करने के बाद पृथ्वी की सतह गर्म होकर विकिरण करना प्रारंभ कर देती हैं। पृथ्वी अपना विकिरण दीर्घ तरंगों के रूप में करती है, जिसका (90%) अधिकांश भाग वायुमण्डल में स्थित जलवाष्प तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड एवं ओजोन गैसे ग्रहण कर लेती है, जिससे वायुमण्डल का अधिकांश भाग गर्म होता रहता है। यानि वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा जितनी अधिक होगी, बहिर्गामी पार्थिव विकिरणों का अवशोषण उतना ही अधिक होगा। रेगिस्तानी भागों में वायु मण्डल में जलवाष्प की कमी के कारण रात्रि के समय तापमान अत्यधिक नीचा हो जाता हैं। वायुमण्डल का प्रभाव खिड़की के काँच की तरह होता है, जो सौर्यिक विकिरण के लघु तरंगों को प्रवेश करने देती है, परन्तु दीर्घ तरंगों को बाहर जाने से रोकती हैं। इसी कारण से, वायुमण्डल धरातल का तापमान ऊँचा बनाए रखने में सहायक होता है। वायुमण्डल के इस प्रभाव को 'हरित गृह प्रभाव' (Green House Effect) कहते हैं। रात्रि में सौर्य विकिरण से प्राप्त होने वाली उष्मा समाप्त हो जाती है, जबकि पृथ्वी से विकिरण द्वारा उष्मा सतह नष्ट हो जाती है और धरातल ठंडा होने लगता है एवं वायुमण्डल का तापमान कम होने लगता हैं।

1.4.7 संवहन (Convection)

सौर्यिक विकिरण से प्राप्त उष्मा धरातल के सर्म्पक वाली हवा गर्म होकर ऊपर उठती है तथा फैलकर हल्की हो जाती है। जबकि वायुमण्डल का ऊपरी भाग अपेक्षाकृत ठंडा होने के कारण वायु नीचे उतरती है तथा धरातलीय

तापमान के सम्पर्क में आकर गर्म हो जाती हैं। पुनः हल्की होकर ऊपर उठती है। इस प्रकार, वायुमण्डल में संवहन तरंगो का आविर्भाव होता है, जिससे उष्मा का स्थानांतरण होते रहने से वायुमण्डल ऊँचाई तक गर्म होता जाता है। इस तरह से धरातल पर क्षैतिज संवहन तरंगों का भी आविर्भाव होता हैं।

इसके अलावा वायुमण्डल कुछ अन्य गौण विधियों से भी गर्म होता है। सौर्यिक तथा पार्थिव उष्मा का कुछ भाग वाष्पीकरण तथा संघनन (Conduction) के रूप में लगा रहता है। इस तरह संघनन की गुप्त उष्मा (Latent heat) द्वारा भी वायुमण्डल गर्म होता हैं। पृथ्वी के विभिन्न स्थानों को ठीक प्रकार से समझने के लिए, पृथ्वी पर तापमान को जलवायु का आधार बनाकर विश्व को कटिबंधो में विभाजित करके समझा जा सकता है। हालांकि जलवायु का वर्गीकरण, तापमान, वर्षा, वनस्पति तथा वायुराशियों के आधार पर किया जाता है। संसार के जलवायु को तीन प्रकारों में विभाजित किया जाता है। उष्मा समशीतोष्य तथा शीत जलवायु। ''धरातल के उस क्षेत्र को जहाँ सभी ऋतुओं की औसत दशाएँ समान हो, जलवायु क्षेत्र कहते हैं।'' पृथ्वी पर जलवायु प्रदेशों का वर्गीकरण जलवायु के विभिन्न तत्वों के संयोगों की विभिन्नता को प्रदर्शित करता है एवं ऐसे क्षेत्रों की सीमा का निर्धारण करता है, जहाँ इन तत्वों के समान संयोग पाये जाते हैं।

विश्व की जलवायु का सर्वप्रथम वर्गीकरण यूनानी विद्वानों ने किया था। यह वर्गीकरण तापमान के आधार पर था। अतः इन्हें ताप कटिबंधों के नाम से जाना जाता हैं।

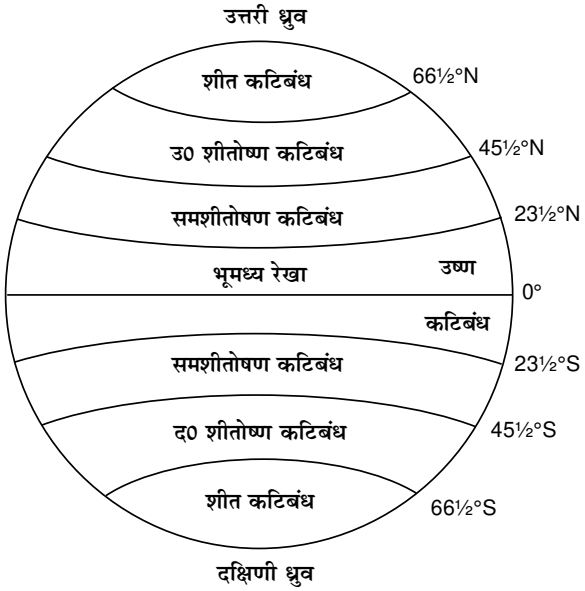

चित्र 1.1 : **पृथ्वी के कटिबंध**

(i) **उष्ण कटिबंध (Tropical Zone) :** विषुवत रेखा से उत्तर में कर्क रेखा (23½º उ०) तथा दक्षिण में मकर रेखा (23½º द0) तक के क्षेत्र को उष्ण कटिबंध के नाम से सम्बोधित किया गया था। इस क्षेत्र में औसत तापमान 20ºC रहता हैं।

(ii) **समशीतोष्ण कटिबंध (Temperate Zone) :** विषुवत रेखा से उत्तर कर्क रेखा 23½º उ० से 45½º उ० उत्तरी अक्षांश के बीच का भाग तथा उसी प्रकार 23½º S से 45½º S दक्षिणी गोलार्द्ध को भी समशीतोष्ण कटिबंधा (Temperate Zone) के रूप में जाना जाता है ।

(iii) **शीतोषण कटिबंध (Tundra Zone) :** उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में 45½º से 66½º अक्षांशों के मध्य शीतोष्ण कटिबंध स्थित है। यहाँ चार महीने तापमान 20ºC से कम रहता है तथा आठ महीने ग्रीष्म पड़ता है । अतः यह ग्रीष्म प्रधान क्षेत्र है ।

(iv) **शीत कटिबंध (Cold Zone) :** दोनों गोलाद्धों में 66½º अक्षांशों से उत्तरी ध्रुव तक तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में 66½º द० से दक्षिणी ध्रुव तक शीत कटिबंध का विस्तार पाया जाता है। यहाँ कठोर शीत ऋतु रहती है तथा ग्रीष्म ऋतु का अभाव पाया जाता हैं। आठ महीने तापमान 10ºC से नीचे रहता है। ध्रुवों पर सदा हिम जमी रहती है। यहाँ छः महीने का दिन और छः महीने की रात होती हैं।

उपरोक्त बातों का अध्ययन ही तापमान के अंतर्गत करते हैं। अब, इसे और अधिक जानने के लिए वायु, वायुदाब एवं आर्द्रता को भी जानेगें क्योंकि यह तापमान तथा जलवायुविक विज्ञान से अंतर संबंधित हैं।

1.5 जलवायुयिक विज्ञान (Climatology)

पृथ्वी पर अलग-अलग भागों की जलवायुविक स्थिति को जानने के लिए हमें इसका विस्तार अलग-अलग अक्षांशों तथादेशांतरों के अनुसार करना होगा। जलवायु शब्द की उत्पत्ति जल तथा वायु शब्दों के मेल से बना है। जिसे अंग्रेजी में Climate कहते है, जिसकी उत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'क्लाइमा' (Klima) से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'झुकाव' (Inclination) अथवा सूर्य की किरणों का तिरछापन। वास्तव में जलवायु किसी वृहत् क्षेत्र अथवा प्रदेश के वायुमण्डल की लम्बी अवधि की सामान्य दशाओं को कहते हैं। चुँकि हमारी पृथ्वी पर ताप की मात्रा अलग-अलग अक्षांशो में भिन्न होने के कारण, उनके जलवायुविक स्थिति में स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है। इन अंतरों के अनुसार ही हम पृथ्वी का जलवायुयिक विभाजन (Climatology) करते हैं। **फिन्च_और ट्रिवार्था** के अनुसार कुछ समय के लिए किसी स्थान की वायुमण्डल की अवस्थाओं (तापमान, वायुदाब, आर्द्रता एवं हवाओं) के कुल योग को मौसम (Weather) कहा जाता है। मौसम निरंतर परिवर्त्तनशील रहता है। मौसम की इन बदलती हुई अवस्थाओं को ही जलवायु कहते हैं। किसी प्रदेश के वर्षभर के अलग-अलग मौसमों की अवस्थाओं के मिश्रण की ही जलवायु कहते हैं। जलवायु को निर्धारित करने वाले तत्व हैं :-

1.5.1 अक्षांश (Latitude)

पृथ्वी पर सूर्याताप की मात्रा किरणों के कोण पर निर्भर करती है। सूर्याताप की मात्रा किरणो के कोण के अनुसार बदलती रहती है। उदहारणार्थ विषुवत रेखा पर सूर्य की किरणे लम्बवत् पड़ती है। जबकि ध्रुवों पर सूर्यताप की प्राप्ति कम होने के कारण तापमान कम रहता हैं।

1.5.2 समुद्रतल से ऊँचाई (Height above Sealevel)

किसी स्थान की समुद्रतल से ऊँचाई, उस स्थान के जलवायु को प्रभावित करती है। समुद्रतल की ऊँचाई के साथ-साथ तापमान घटता जाता है क्योंकि ऊँचाई के साथ-साथ वायु हल्की होती जाती है जबकि नीचे की वायु, ऊपर दाब के कारण घनी होती है। अत: धरातल के निकट की वायु का ताप ऊपर की वायु के ताप से अधिक रहता है। अत: जो स्थान समुद्रतल से जितना अधिक ऊँचा होगा, उतना ही शीतल होगा। इसी कारण अधिक ऊँचाई के पर्वतीय भागों में सदा हिम जमी रहती हैं।

1.5.3 पर्वतों की दशा (Condition of Mountains)

पर्वतों की दिशा का हवाओं पर प्रभाव पड़ता हैं, हवाएँ तापमान को प्रभावित करती है। इस प्रकार पर्वतो की दिशा तापमान को प्रभावित करती है। हिमालय पर्वत शीतऋतु में मध्य एशिया की ओर से आने वाली शीत हवाओं को भारत में प्रवेश करने से रोकता है। अत: शीतऋतु में भारत में तापमान अधिक नहीं गिर पाता हैं।

1.5.4 समुद्री प्रभाव (Effects of sea)

समुद्र की निकटता एवं दूरी भी जलवायु को प्रभावित करती है। समुद्र के निकट समशीतोष्य जलवायु पाई जाती है, जबकि दूर के भाग पर जलवायु भिन्न पाई जाती हैं।

1.5.5 पवनों की दिशा (Directions of Wind)

पवनों की दिशा भी जलवायु का प्रभावित करती है, ठण्डे स्थानों से आने वाली हवाएँ जलवायु को ठण्डी तथा उष्ण प्रदेशों से आने वाली हवाएँ जलवायु को उष्ण बनाती हैं।

पृथ्वी के जलवायुविक विभाजन का मुख्य आधार तापमान है जिसके आधार पर इसे मुख्यत: उष्ण कटिबंध , शीतोष्ण कटिबंध तथा शीत कटिबंध में बाँटा गया है। परन्तु अनेक बुनिद्वानों ने केवल तापमान के आधार पर जलवायु प्रदेशों का वर्गीकरण को अनुचित ठहराया है। **कोपन (Kopen)** ने सन् 1900 में, जलवायु प्रदेशों का

वर्गीकरण तापमान तथा वर्षा को आधार माना। उन्होंने जलवायु प्रदेशों को पाँच मुख्य भागों तथा तीन उपविभागों में बाँटा हैं। इस जलवायु के विभागों तथा उप विभागों की सीमा का निर्धारण जलवायु मूल्यों के आधार पर किया हैं।

(a) उष्ण कटिबंधीय, आर्द्र जलवायु, जहाँ प्रत्येक महीने का तापमान 18º से०ग्रे से अधिक रहता हैं।

(b) शुष्क जलवायु इन क्षेत्रों में वर्षा कम और वाष्पीकरण की मात्रा अधिक होती हैं।

(c) समशीतोष्ण जलवायु-सर्वाधिक शीत वाले महीने का औसत तापमान 13° से०ग्रे० से कम परन्तु –3° से०ग्रे० से अधिक होता है तथा सबसे अधिक उष्ण महीने का तापमान 10° से०ग्रे० रहता हैं।

(d) मध्य अंक्षांशो आर्द्र सूक्ष्म तापीय अथवा शीतोष्ण आर्द्र जलवायु जहाँ सबसे अधिक ठण्डे महीने का तापमान –3° से०ग्रे० तथा सबसे अधिक उष्ण महीने का तापमान 10° से०ग्रे० से कम न रहता हैं।

(e) ध्रुवीय जलवायु प्रत्येक महीने का औसत ताप 10° से०ग्रे० से कम रहता हैं।

इसके अलावा ABCDE के साथ निम्न छोटे अक्षरों का उपयोग कर कोपन ने उप-विभागों को प्रदर्शित किया–

f = सभी मौसम आर्द्र,

w = ग्रीष्म शीत ऋतु शुष्क,

s = ग्रीष्म ऋतु शुष्क

m = मानसूनी अधिक वर्षा

h = औसत वार्षिक ताप 18° से०ग्रे० से ऊपर

इस प्रकार, हम पृथ्वी के अलग-अलग भागों को अलग जलवायुविय भागों में बाँटते हैं।

1.5.6 वायु, वायुदाब एवं आर्द्रता (Wind, Wind Presure and Humidity)

वायु जीव-जगत् के जीवन का आधार है, हमारा वायुमण्ड मिश्रित गैसों का मिश्रण है। पृथ्वी की सतह चारों ओर से वायु के आवरण से ढँकी है, जिसे हम वायुमण्डल कहते हैं। वैसे तो वायुमण्डल अनेक गैसों के मिश्रण से बना है, जिसमे दो प्रधान हैं– नाइट्रोजन एवं ऑक्सिजन। धरातल के निकट वायुमण्डल को रचना में जलवाष्प की मात्रा विद्यमान होती है। इसके अलावा पूरी पृथ्वी पर लगभग एक-सी है। यदि वायु को जलवाष्प मुक्त बना दिया जाय, तो धरातल के निकट उसकी रचना लगभग इस प्रकार हैं :–

नाइट्रेजन (Nitrogen)	78.3 प्रतिशत	आयतन
आक्सिजन (Oxygen)	20.99 प्रतिशत	आयतन
ऑर्गन (Argon)	0.94 प्रतिशत	आयतन
कार्बन-डाइ-ऑक्साइड (Carbon–di–Oxide)	0.03 प्रतिशत	आयतन
हाइड्रोजन (Hydrogen)	0.01 प्रतिशत	आयतन

अर्थात् धरातल के निकट हवा का लगभग 99% भाग, नाइट्रोजन और ऑक्सिजन केवल इन्हीं दो गैसों का मिश्रण है। ऑक्सिजन बहुत ही महत्वपूर्ण गैस है। यह मनुष्यो तथा पशुओं द्वारा सांस में ली जाती है तथा आग भी इसी से जलती है। अन्य महत्वपूर्ण गैसों में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड विशेष महत्वपूर्ण है– क्योंकि पेड़-पौधों द्वारा सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में, इस गैस का उपयोग कर अपना भोजन बनाती है तथा ऑक्सिजन छोड़ती हैं।

पृथ्वी पर की रचना वायुमण्डल की रचना लगभग 20,000 फुट तक समान हैं। वायुमण्डल में ऊँचाई के अनुसार वायु में गैसों का अनुपात बदलने लगता है। ज्यादातर 20,000 फुट की ऊँचाई पर कार्बन-डाइ-ऑक्साइड लगभग न के बराबर मिलता हैं। इसी प्रकार अधिक ऊँचाई पर जलवाष्प भी नहीं मिलता है। धरातल के निकट

गैसों के अतिरिक्त दो अन्य चीजें वायुमण्डल में पाई जाती है, और वह हैं जलवाष्प एवं धूलकण जलवाष्प के कारण वर्षा होती है तो जलवाष्प को वायुमण्डल में एकत्रित करने का कार्य धूलकणों द्वारा होता है। हवा में वर्षा की बूदें इन्हीं के सहारे बनती हैं। सूर्योदय से पहले तथा सूर्यास्त के पश्चात, जो हल्की रोशनी हमे मिलती है, वह धूलकणों के फलस्वरूप ही दिखता हैं। वायु मिश्रण से जो आवरण पृथ्वी को ठँके है, वह वायुमण्डल है, जो करीब 16,000 से 29,000 मिलोमीटर ऊँचाई तक माना जाता हैं। मोटे तौर पर लगभग 10,000 किलोमीटर की ऊँचाई के बाद वायुमण्डल अत्यंत विरल होता जाता हैं। वायुमण्डल का घनत्व धरातल के पास सबसे अधिक है जो ऊँचाई के साथ कमता चला जाता है। वायुमण्डल की तापीय संरचना (Thermal structure of atmosphere) के आधार पर, इसे चार तहों (Spherical shells) में विभाजित किया जा सकता है। **क्षोभमण्डल** या **परिवर्त्तन मण्डल (Troposphere)**, यह वायुमण्डल का सबसे निचला तह हैं, जिसकी औसत ऊँचाई 14 किलोमीटर है। इसकी ऊँचाई अंक्षाश तथा ऋतु के साथ बदलती रहती है। यही मानवीय कार्यो के लिए बहुत महत्वपूर्ण भाग है। ध रातलीय जीवों का संबंधा इसी मण्डल से रहता है। वायुमण्डल के इस भाग में भारी गैसों, जलवाष्प तथा धूलकणों का अधिकतम भाग रहता है। यह भाग संवाहन, संचालन तथा विकिरण द्वारा गर्म अथवा शीतल होता है। आँध ी तुफान, बादल, चक्रवात, प्रति चक्रवात आदि सभी वायुमण्डलीय तत्व इस परिवर्तन मण्डल के प्रमुख घटनाक्रम हैं। क्षोभमण्डल तथा समताप मण्डल के मध्य, **मध्य स्तर (Tropopause)** करीब 1.5 किलोमीटर तक फैला होता है। वायुमण्डल की इस पेटी में परिवर्तन मण्डल का गुण विलीन हो जाता है। यह क्षोभमण्डल तथा समताप मंडल के मध्य में संक्रमण भाग हैं। **समताप मण्डल (Stratosphere)** यह मण्डल मध्य स्तर के बाद प्रारम्भ हो जाता है इसकी ऊँचाई 18 से 30 किलोमीटर तक आँकी गयी हैं। इस मण्डल में तापमान लगभग समान रहते हैं। **ओजोन मण्डल (Ozono sphere)** समताप मण्डल के ऊपरी परत पर ही स्थित हैं, जो सूर्य किरणों की हानिकारक पराबैंगनी/अल्ट्रा वायलेट (Ultraviolet) से बचाती हैं। **आयनमण्डल (Ionosphere),** वायुमण्डल में 80 किलोमीटर से 500 किलोमीटर की ऊँचाई तक विस्तृत हैं। यहाँ ब्रहमाण्ड की कास्मिक किरणे ग्रहण कर विद्युतमय हो जाती है। इस मण्डल की ऊपरी परतें पराबैगनी फोटोन (सूर्य की विशेष हानिकारक किरणें भी अवशोषित करती है। इस मण्डल को D.E एवं F परतों में बाँटा गया हैं।

बर्हिमण्डल या आयतन मण्डल (Exosphere) : यहाँ पर वायुमण्डल बिखरने की स्थिति में होती है। यहाँ विशेष गर्म तथा बहुत हल्की गैसे गुच्छों के रूप में मिलती हैं।

1.5.7 वायुदाब (Atmospherei Pressure):

वायुमण्डलीय दाब को संक्षेप में वायुदाब कहा जाता है। यह वायु के पदार्थ होने एवं उसकी भौतिक दशा की स्थिति है। पृथ्वी की सतह पर वायुमण्डल का भार या दबाव पड़ता है। किसी स्थान पर यह दबाव, उसके ऊपर की वायु की मात्रा पर निर्भर करता है। अर्थात् समुद्र की सतह पर वह दबाव अधिक होगा और ऊँचे पहाड़ों पर कम हवा के ऊपरी परतों का भार निचली परतों पर पड़ता है। इसलिए ऊपर की हवा हल्की तथा फैली होती है और नीचे की हवा भारी तथा अपेक्षाकृत घनी होती हैं। वायुदाब को बैरोमीटर (Barometer) नामक यंत्र से मापा जाता है। बैरोमीटर से हम वायुभार को इंच अथवा मिलीबार (m.b.) में पढ़तें हैं। समुद्र की सतह पर औसत वायुभार 29.9 इंच अथवा 1012 मिलीवार है, जो लगभग 14.7 पौंड प्रति वर्ग इंच के बराबर है। पृथ्वी की ध रातल परवायु भार प्राय: 1,000 मिलीबार अर्थात् 29.53 इंच से कभी कम या कुछ अधिक रहता हैं।

हालाँकि वायुदाब अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न रहती है। इसके निरंतर बदलती दशा को प्रभावित करने के लिए प्रभावी कारक है: (i) तापमान, (ii) आर्द्रता, (iii) ऊँचाई, एवं पृथ्वी की दैनिक गतियाँ।

1.5.8 आर्द्रता (Humidity):

जल का गैसीय रूप (वाष्प) जो वायु में विद्यमान रहता है अर्थात् जलवाष्प को वायुमण्ड की आर्द्रता कहते हैं। वायुमण्डल में यह जलवाष्प की मात्रा पृथ्वी से वाष्पीकरण के अलग-अलग रूपों में पहुँचती हैं। हवा में

जलवाष्प ग्रहण की शक्ति, उसके तापमान से संबंधित है। हवा जितनी ज्यादा गर्म होगी, उसमें उतनी अधिक जलवाष्प ग्रहण करने की शक्ति होगी। सामान्यत: तापमान के अधिक रहने पर वाष्पीकरण (Evaporation) सबसे अधिक होता है। इसलिए वायुमण्डल में सबसे अधिक वाष्प हम विषुवत रेखा के निकट महासागरों के ऊपर पाते हैं और सबसे कम जलवाष्प शीतकाल में एशिया के विशाल स्थल-खण्ड के ऊपर-पूर्वी सर्द भाग में एक घनफुट वायु में एक निश्चित सीमा तक वाष्प रह सकता हैं। परन्तु यह सीमा पूर्णत: हवा के ताप पर निर्भर करती है। जब वायु अपने अधिकतम सीमा तक जलवाष्प ग्रहण करलेती है, तो वैसी हवा के संतृप्त वायु (Saturated air) कहते हैं।

1.5.9 निरपेक्ष आर्द्रता एवं सापेक्ष आर्द्रता (Absolute Humidity and relative humidity):

किसी निश्चित आयतन वाली वायु में, किसी निश्चित तापमान पर पाई जाने वाली नमी की मात्रा को उस वायु का वास्तविक या निरपेक्ष आर्द्रता (Absolute or Real Humidity) कहते हैं। उदाहरणार्थ, 30° F ताप पर जलवाष्प 2.21 ग्रेन प्रत्येक घनफुट में होता है। यह 2.21 ग्रेन प्रति इकाई उसकी वास्तविक या निरपेक्ष आर्द्रता कहलायेगी। यदि हवा में आर्द्रता की मात्रा बढ़ जाती है, यह अतिरिक्त नमी प्राप्त करने के कारण या अधिक तापवृद्धि के पश्चात् बढ़ जाती है, जैसे-2.21 ग्रेन के स्थान पर 3.09 ग्रेन हो जाती है, तो बदली हुई स्थिति में वायु की निरपेक्ष आर्द्रता बदल जाती है। वायु में आर्द्रता की मात्रा स्थिर नहीं रहती हैं। किसी निश्चित समय का उल्लेख करते हुए, इसका माप अंकित किया जाता है।

इस प्रकार, हवा में किसी तापक्रम पर जितना अधिक जलवाष्प रह सकता है और उसका जितना प्रतिशत वाष्प हवा में विद्यमान रहता है, उसे ही हवा की सापेक्ष आर्द्रता (Relative humidity) के नाम से जाना जाता है। अर्थात् एक अनुपात में प्रदर्शित की गई आद्रता है। यह एक अनुपात के अनुसार, जैसे- एक घनफुट या पूर्व निश्चित तापमान एवं आयतन की वायु में उपस्थित वास्तविक नमी एवं उस वायु की अधिकतम नमी ग्रहण करने की क्षमता के मध्य होता है। जैसे 70°F ताप पर 1 घनफुट वायु 8.00 वाष्प को रखने की क्षमता रखती है। यदि हवा में केवल 4 ग्रेन वाष्प मौजूद है तो हवा की सापेक्ष आर्द्रता 4/8×100= 50 प्रतिशत होगी। तापमान के बढ़ने या घटने से हवा की वाष्प-ग्रहण की शक्ति में अंतर होता हैं और उसी के अनुसार सापेक्ष आर्द्रता भी बदलती रहती है। कह सकते हैं कि सापेक्ष आर्द्रता से हमें हवा की आद्रर्ता का शुद्ध स्वरूप का ज्ञान होता हैं।

अब हम भूगोल की अवधारणा के अंतर्गत जलमण्डल तथा समुद्र विज्ञान की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.6 जलमण्डल एवं समुद्र विज्ञान (Hydrology and oceanography):

इस पाठ के इस भाग में हम जलमण्डल का विस्तृत अध्ययन को जानेगें। इसके अंतर्गत हम महासागरो की तलीय विशेषताएँ (Features of the ocean floor) सागरीय जल का खारापन (Salinity of Oceanic water), सागरीय जल परिसंचरण : लहरें, धाराएँ एवं ज्वारभाटा (Circulation of Oceanic water : waves, currents and tides), एवं महासागरीय निक्षेप (Ocean deposits) इत्यादि पर चर्चा करेंगें।

पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग पर जलमण्डल स्थित हैं। इस जल-मण्डल के अंतर्गत सभी महासागर, उनके तटीय सागर, खाड़ियाँ, विशाल अंतर्देशीय सागर, सम्मिलित हैं। पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल भाग अधिक यानि 54 प्रतिशत है, जबकि जलभाग मात्र 46 प्रतिशत हैं। वही दक्षिणी गोलार्द्ध का 81 प्रतिशत भाग जलमण्डल हैं तथा केवल 19 प्रतिशभाग ही स्थल मण्डल है। उपरोक्त बातें हमें यह समझाती है कि पृथ्वी के लगभग तीन चौथाई भाग पर जलमण्डल अवस्थित है। समस्त पृथ्वी का क्षेत्रफल 50,995 करोड़ वर्ग किलोमीटर है, जिसके 36,106 करोड़ वर्ग कि०मी० क्षेत्रफल (71%) तथा 14,886 करोड़ वर्ग किलोमीटर पर स्थल मण्डल फैला है। आकार तथा स्थिति के अनुसार जलमण्डल को महासागर (Oceans), सागर (Seas), लघु परावृत्त सागर (Small enclosed seas) तथा खाड़ियों (Bays) में बटाँ हुआ है। महासागरों में प्रशांत महासागर (Pacific ocean) जिसका क्षेत्रफल 16.5 करोड़ वर्ग किलोमीटर, आंध्र महासागर (Atalantic Ocean) जिसका क्षेत्रफल 8.2 करोड़ वर्ग किलोमीटर, हिन्द महासागर (Indian Ocean) जिसका क्षेत्रफल 7.

3 करोड़ वर्ग किलोमीटर तथा आर्कटिक महासागर (Arctic Ocean) का क्षेत्रफल 1.4 करोड़ वर्ग किलोमीटर में विस्तृत हैं। आंतरिक सागर, जिसके अंतर्गत भूमध्यसागर, बाल्टिक सागर, हडसन, बंगाल की खाड़ी, मैक्सिको की खाड़ी इत्यादि के अंतर्गत शेष क्षेत्रफल आता हैं।

1.6.1 महासागरों की तलीय विशेषताएँ (Fetures of theOcean Floor):

महासागरों के तल की गहराई औसतन (सभी महासागरो की) समान नहीं हैं। वैसे तो सम्पूर्ण महासागरों की औसत गहराई 4,800 मीटर है, वहीं प्रशांत महासागर की गहराई सबसे अधिक 5,000 मीटर है, हिन्द महासागर की 4,000 मीटर, आंध्र महासागर की 3,930 मीटर एवं आर्कटिक महासागर की 1,280 मीटर औसत गहराई है। महासागरीय तल को जानने के लिए, इसे ढाल के स्वरूप विस्तार एवं गहराई के अनुसार महाद्वीपीय निमग्न तट (Continental shelf) महाद्वीपीय निमग्न ढाल (Continental slope), अगाध सागरीय मैदान (Deep sea plain), महासागरीय गर्त एवं खाइयाँ (Ocean deeps or trenches), अंत: महासागरीय कंढराएँ (Deep oceanic canyons) एवं महासागरीय कटक एवं पठार (Ocean ridges and Plateause) आदि को आधार बनाकर महासागरीय तली को जाना-समझा जाता हैं।

1.6.2 सागरीय जल का खारापन (Salinity of Oceanic water):

सागरीय जल का स्वाद तीखा या खारा होता है। ऐसा सागरीय जल में घुले हुए लवण-पदार्थो के कारण होता है। अर्थात् सागरीय जल के भार तथा उसमे घुले हुए पदार्थो के भार के अनुपात को 'सागरीय लवणता' कहते हैं। एक किलोग्राम सागरीय जल मे घुले हुए ठोस पदार्थो की कुल मात्रा को 'लवणता' कहते हैं। सागरीय लवणता को प्रति हजार ग्राम जल में स्थित लवण की मात्रा के रूप में दर्शाया जाता है। जैसे 1000 ग्राम सागरीय जल में 30 ग्राम लवण की मात्रा है। महासागरो के लवणता का स्पष्ट प्रभाव उसमें रहने वाले जीव-जंतुओं के साथ-साथ वनस्पतियों पर भी दृष्टिगोचर होता है। इन सब के अलावा महासागरों की भौतिक विशेषताएँ, तापक्रम, घनत्व, ध ारायें, दबाव आदि भी उससे प्रभावित होती है। सागर का हिमांक बिन्दु (Freezing point) भी लवणता पर ही आधारित होती है। उदाहरणार्थ कम लवणयुक्त सागर जल्दी, तो अधिक लवणयुक्त सागर देर से जमता है। सागर का क्वथनांक बिंदु अथवा उबाल-बिंदु (boiling point) भी लवणता पर निश्चित होता है। सामान्य जल का क्वथनांक बिन्दु हमेशा कम तथा सागरीय जल का ऊँचा होता हैं।

1.6.3 सागरीय जल परिसंचरण : लहरें, धाराएँ तथा ज्वार भाटाएँ (Circulation of Oceanic Water : Waves, Currents and Tides):

महासागरीय जल कभी भी स्थित नहीं रहता है। हवाओं के चलने से जल में तरंगे या लहरें उठती हैं। जब लहरें या तरंगे एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होती हैं, तो उसे धाराएँ कहते हैं। जल में उठने वाली ज्वारीय लहरें, सूर्य एवं चन्द्रमा के गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव से उठती हैं। महासागरो के भौतिक एवं रासायनिक लक्षणों, जैसे-तापमान, खारापन, घनत्व, बर्फ की मात्रा आदि में अंतर आने पर एवं हवाओं या पवनों के प्रभाव से गर्म प्रदेशो मे हल्का एवं गर्म पानी नदियों की भाँति सागर तल पर शीतोष्ण प्रदेशो की ओर बढ़ता है। इसी प्रकार, ध्रुवो से चलने वाली धाराएँ ठण्डे पानी की होती है। अत: हम कह सकते हैं कि महासागरीय जल मे तीन प्रकार की गतियाँ पाई जाती है, जिसे लहरो (Waves), धाराओं (Currents) एवं ज्वार भाटा (Tides) में बाँटा जाता हैं।

(i) **लहरें (Waves) :** जल की सतह पर पवनों के चलने के उत्पन्न होती हैं। लहरों के कारण पानी मे लहरदार आकृति या वलन बनती है और जल्द ऊपर उठते तथा नीचे गिरते हुए प्रतीत होता है। अत: ऐसी लहर के ऊपरी भाग का शीर्ष अथवा ऊपरी सिरा एवं निचले भाग को गर्त या द्रोणी कहते हैं। जल के इसी ढोलयमान अवस्था को लहरें कहते है तथा इससे वास्तव में पानी ऊपर-नीचे हिलता-डुलता प्रतीत होता है। परन्तु उसमे आगे बढ़ने की क्रिया नहीं होती है। दो लहरों के शीर्ष बीच की दूरी के लहर की लम्बाई तथा लहर के शीर्ष तथा गर्त के मध्य अतरको **लहर की ऊँचाई** कहते हैं।

(ii) **धाराएँ (Currents) :** महासागरों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली गति हैं। धाराएँ सागर के जल में एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होने वाली गतियाँ हैं॑ यह धरातलीय भाग पर प्रवाहित होने वाली नदियो के समान ही होती हैं। वास्तव में, सागरीय गतियों में, धाराएँ सबसे ज्यादा शक्तिशाली होती हैं। धाराओं के द्वारा सागरीय जल को हजारों किलोमीटर तक बहा लिया जाता हैं। इन्हीं धाराओं को ध्यान में रखकर महासागरीय परिवहन मार्ग निर्धारित किया जाता हैं। यह उत्तम बंदरगाहों की स्थितियाँ भी निर्धारित करती हैं। ये धाराएँ पृथ्वी के तापमान संतुलन को बनाए रखने में भी सहायक होती हैं। हालांकि, धाराओं को उनके तापमान के आधार पर बाटा जाता हैं और इसे गर्म धारा (Warm current) तथा ठण्डी धारा (Cold current) कहा जाता है। धाराओं की गति, आकार तथा दिशा में पर्याप्त अंतर होता है। इसके आधार पर धाराओं को कई उप-प्रकार में विभक्त किया जताा है।

(iii) प्रवाह (Drift) जब सागरीय जल हवा के प्रवाह से प्रेरित हो कर सागर की सतह पर अग्रसर होता है, इसे ही प्रवाह कहते है। इसकी सीमा एवं गति निश्चित नहीं होती है। जैसे- उत्तरी अटलांटिक प्रवाह, द० अटलांटिक प्रवाह आदि। धारा (Current) के अंतर्गत सागर जल का एक निश्चित सीमा के अंतर्गत निश्चित दिशा की ओर तीव्र गति से अग्रसर होता है, तो उसे धारा की संज्ञा दी जाती है। इसकी गति प्रवाह की अपेक्षा तीव्र होता है। कुछ धाराएँ ठंडी होती है तथा कुछ धाराएँ गर्म होती हैं। गर्म धाराएँ ठण्डी धाराओं की अपेक्षा तेज गति से प्रवाहित होती हैं। इसी प्रकार, विशाल धारा (Stream) जब सागर का अत्यधिक जल भूतल की नदियों के समान एक निशितच दिशा में गतिशील होता है, तो उसे विशाल धारा कहते है, उदाहरणार्थ गल्फ स्ट्रीम। इसकी गति प्रवाह (Drift) तथा धारा (Current) से अधिक होती है। महासागरों में धाराओं की उत्पत्ति के कई कारण होते हैं, जिसके मिले-जुले अथवा सम्मिलित प्रभाव के रूप में धाराएँ दिखती हैं। धाराओं की उत्पत्ति के कारणों में, पृथ्वी के परिभ्रमण क्रिया, सागरीय जल की अपनी विशेषताएँ, गुरूत्वाकर्षण बल आदि के अलावा कुछ बाह्य कारक यथा वायुदाब तथा हवाएँ, वाष्पीकरण तथा वर्षा आदि आते हैं। इसके साथ-साथ तट की दिशा एवं आकार, तलीय आकृतियाँ, मौसमी परिवर्तन वगैरह भी अपना अहम योगदान देता हैं।

धाराओं का सीधा प्रभाव विपरीत तापमान वाले प्रदेशों पर पड़ता है। जब गर्म धाराएँ ठण्डे सागरों की ओर बहती है, जिससे उस स्थान विशेष का तापमान बढ़ जाता है और ऐसे सागर में सर्दियों में भी तापमान यातायात के लायक बना रहता है, जैसे-पश्चिमी यूरोप, होंशु, पश्चिमी न्यूजीलैण्ड के तट। इसी प्रकार, गर्म प्रदेशों के तट पर ठण्डी धाराओं की वजह से ठण्डक बनी रहती है। इन स्थानों पर भूमी से सागर की ओर हवाएँ बहती है, जिससे इनका प्रभाव तट तक ही बना रहता हैं और वर्षा भी कम ही होती हैं। जिन स्थानों पर गर्म और ठण्डी धाराएँ मिलती हैं और दोनों धाराओं के बीच तापमान के अत्यधिक अंतर होता है, तो वहाँ घना कोहरा छाया रहता है, जिससे सागरीय यातायात में कठिनाईयाँ आती हैं। जैसे-गल्फ स्ट्रीम, लेब्रेडोर के बीच न्यूफाउण्ड लैंड के निकट मिलता है। ऐसे स्थानो को मछली पकड़ने के लिए आदर्श माना जाता हैं। शीतोष्ण सागरों मे गर्म धारा चलने से हवा में नमी का स्तर बढ़ जाता है और वहाँ चक्रवातों अथवा वाताग्रों (Cyclones) के निर्माण होने में सहायता मिलती है। धाराओं की सहायता से समुद्र पोतो के उपयोग में सहायता मिलती है। महासागरीय धाराओं का प्रभाव तापमान एवं मौसम पर भी पड़ता है तथा इसका सीधा प्रभाव लोगो की कार्य क्षमता, व्यापार, यातायात, समुद्री जगत एवं वातावरण पर पड़ता हैं।

(iii) **ज्वार-भाटाएँ (Tides) :** महासागरीय गतियों में जैव ज्वार-भाटाएँ भी अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं क्योकि इसका प्रभाव सागर तल से सागरतली तक दिखता हैं। सूर्य तथा चंद्रमा की आकर्षण शक्तियों के प्रभाव से सागरीय जल के ऊपर उठने तथा गिरने की क्रिया को ज्चार-भाटा कहते है तथा इससे उत्पन्न तरंगों को ''ज्वारी-तरंग'' कहते हैं। सागरीय जल के ऊपर उठकर आगे बढ़ने की क्रिया को (तट की ओर) ज्वार (Tide) तथा नीचे गिरने की क्रिया को भाटा (Ebb) कहते हैं। ज्वार-भाटा के समय सागर तल में आने वाले परिवर्तनों का मापा जा सकता हैं। ज्वार-भाटा की ऊँचाई अलग-अलक स्थानों पर भिन्न होती है। यह भिन्नता सागर में जल की गहराई, सागरयी तट की रूप-रेखा तथा सागर के खुले होने या बंद होने पर आधारित होती है। अतिप्राचीन काल से ही सागर तल के ऊपर उठने एवं घटने की क्रिया का चन्द्रमा से सीधा संबंध माना जाता रहा हैं। भारत में **भाष्कराचार्य** एवं **आर्यभट्ट** ने **गुरूत्वाकर्षण का वर्णन** करते हुए सागर तल के परिर्तन एवं आकाशीय पिण्डों के

बीच के संबंध का बताने का प्रयास किया था। आधुनिक युग में न्यूटन ने सन् 1657 में 'गुरूत्वाकर्षण के सिद्धांत' द्वारा इसे वैज्ञानिक तरीके से समझाया।

ज्वार-भाटा की ऊँचाई भिन्न-भिन्न तटों पर अलग होने के कारण, इसके अनुसार ही तट पर सावधानियाँ बरती जाती हैं। खुले सागरों में ज्वारीय लहर की ऊँचाई लगभग समान रहती है। परन्तु आंतरिक सागरों तथा तटीय भागों में, तट रेखा की प्रकृति, नदी के मुहाने की दिशा, ज्वारीय लहर के प्रवेश का मार्ग आदि से ज्वार की ऊँचाई प्रभावित होती है। उदाहरणार्थ थेम्स एवं हुगली नदी में ज्वारीय लहर के प्रवेश से सागर का जलतल 7 से 9 मीटर तक ऊपर उठ जाता हैं। इससे ज्वार के समय जहाज क्रमशः लंदर एवं कलकत्ता बंदरगाह में प्रवेश कर जाते हैं एवं भाटे के समय जब जल गिरने एवं लौटने लगता है तो पुनः लौट सकते हैं।

ज्वार की उत्पत्ति को प्रभावित करने वाले कारक में **सूर्य** एवं **चन्द्रमा** की आकर्षण शक्ति मुख्य है। इसमें भी **चंन्द्रमा** की आकर्षण शक्ति तथा भ्रमण अवधि अति महत्वपूर्ण है। अतः पृथ्वी पर ज्वारीय लहर को प्रभावित करने में सूर्य एवं चन्द्रमा की स्थिति तथा अपकेन्द्रित बल की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है। इनके अलावा, महाद्वीपों का विस्तार एवं महासागरों एवं तटीय खाड़ियों की आकृतियों का भी विशेष प्रभाव पड़ता हैं।

अब हम समुद्र विज्ञान एवं जलमण्डल के अंतर्गत महासागरीय निक्षेप को जानेगें।

1.6.4 महासागरीय निक्षेप (Ocean Deposits):

महासागरीय तल पर जमा होने वाले सम्पूर्ण पदार्थो को महासागरीय निक्षेप के नाम से जाना जाता है। कोई भी पदार्थ, वह कठोर हो अथवा नरम महासागरीय जल में डूबकर या घुलकर उसमें जमा होते रहते हैं। जैसे मोटे कंकड़-पत्थर तथा रोड़े शीघ्र लुढ़ककर या डूबकर सागर की पेंदी में या तट के निकट ही जमा होते हैं। वहीं बालू लहरों के प्रभाव से फैलकर कुछ अधिक दूरी पर फैलकर जमा हो जाती है। इसी प्रकार, चिकनी मिट्टी, रसायन पदार्थ, गाद (Silt) तथा अन्य सैकड़ों घुले हुए पदार्थ भी सैंकड़ों किलोमीटर तक फैले होते हैं। इन पदार्थो की प्राप्ति स्थल से होती है। अतः इन्हें स्थलजात पदार्थ अर्थात् स्थल से जन्म लेने वाला कहते हैं। इसके विपरीत महासागरों के गर्त में, महासागरीय जल के असंख्य छोटे-बड़े जीवों के मरने से उनके कार्बनिक अवशेषों के जमा होने से एक विशेष प्रकार के जैविक जमाव पाया जाता हैं। इसी प्रकार महासागरीय तल पर, जल में विविध पदार्थो से होने वाली रासायनिक क्रिया, लोटा ऑक्साइड की गाद, ज्वालामुखी विस्फोटों से प्राप्त विशेष मिट्टी इत्यादि भिन्न रंगों एवं प्रकारों में जमा होती रहती है। इसके अलावा बड़ी मछलियों एवं जल जीवों की कठोर हड्डियों, यथा-खोपड़ी, दाँत, जबड़े, ढाँचे इत्यादि के अलावा कास्मिक धूल पदार्थ भी महासागरों की तली पर पाया जाता हैं। महासागरीय तल पर पाये जाने वाले जमाव अधिकांशतः जल से पूरित होने अधिक लचीले या मुलायम होते हैं। कई बार चट्टानी टुकड़े भी खारे जल में अधघुली अवस्था में पाये जाते हैं, जबकि स्थल पर पाये जाने वाले ठोस पदार्थ ठोस अथवा कठोर अवस्था में प्रायः पाये जाते हैं।

हालाँकि महासागरो की विविध गहराइयों पर पाये जाने वाले पदार्थो को स्त्रोत के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। **स्थलजात पदार्थ (Terrigenous Deposits)** के अंतर्गत स्थल भाग के समीपवर्ती भागों जैसे नदियों, लहरों एवं वायु द्वारा समुद्र की तली पर एकत्रित किए गए पदार्थ आते है। ऐसा स्थल पर, क्रियाशील समतलकारी शक्तियों के कारण होता है। ये शक्तियाँ नदियों, पवनों, हिमानी, लहरों इत्यादि के रूप में कार्यरत् रहती है। इन स्थलजात पदार्थो को हम उनकी आकृति एवं भारीपन के अनुसार बाँटे तो मिट्टी, गोलाश्म एवं रेत या बालू (Soil or Boulders and Sand) गाद एवं मृत्तिका (Clay and Silt), घुले हुए पदार्थ एवं पंक या रासायनिक पदार्थ (Mud and Chemical Compounds) जैसे नीली पंक (Blue Mud), लाल पंक (Red Mud) तथा हरी पंक (Green Mud)। **ज्वालामुखी निक्षेप (Volcanic Deposits)** भी महासागरीय तलों पर पाया जाता है। यह ज्वालामुखी उद्गारों से निकली धूल एवं राख से बनता है। ऐसे जमाव सभी सक्रिय ज्वालामुखी वाले प्रदेशों, जैसे पश्चिमी प्रशांत महासागर में दूर-दूर तक भूमध्य सागर एवं पश्चिमी तथा पूर्वी द्वीप समूहों के बीच-बीच में सागर तल पर पाया जाता हैं। प्रायः इनका जमाव भूरा का लाल रंग का होता है। कभी-कभी यह नीले पंक के समान भी पाया जाता हैं। परन्तु, अपघटित होने पर लाल मृत्तिका की भाँति हो जाता हैं।

अब बारी आती हैं **धात्विक निक्षेप (Volcanic Deposits)** की महासागरों के बेसिन में कहीं-कहीं गाद के रूप में संग्रहित धात्विक जमाव (Nodular Metalic Deposits) पाये जाते हैं। उष्ण एवं अद्धोष्ण सागरों के बेसिन में ऐसे धात्विक जमाव अनेक स्थानों पर खोजे जा चुके हैं। इनका जमाव घनत्व साम्यता एवं धात्विक समरूपता एवं उसमे होने वाली समान रासायनिक क्रिया के अधार पर सागर-तल पर होता है। अभी तक लोहा, ताँबा, सीसा, जस्ता आदि धात्विक जमावों के विशिष्ट स्थानों का पता चल सका है। इनके अलावा कठोर जीवावशेष (Neretic Deposits), गम्भीर सागरीय जमाव (Pelagic Deposits) तथा अन्य स्त्रोतों वाले जमाव (Deposits from others sources) भी आते हैं।

इस प्रकार हमने सागरीय निक्षेप की जानकारी प्राप्त की।

1.7 सारांश (Summary):

इस पाठ के अंतर्गत शिक्षार्थियों ने भूगोल शिक्षण के अंतर्गत भूआकृति विज्ञान की अवधारणा से परिचित हुए। इसमें आपने जाना कि पृथ्वी धारातल पर पाये जाने वाले स्थलरूपों, जिसमें स्थलरूपों तथा महासागरों के विषय में पढ़ा। जिसके अंतर्गत पर्वत, पठार, मैदान के साथ-साथ महासागरयी तलों को भी जाना। आगे आपने अंक्षाशो तथा देशांतर का अध्ययन किया तथा जाना कि इन काल्पनिक रेखाओं की सहायता से पृथ्वी पर जो अक्षांश एवं देशातर रेखाओं का जाल बिछाया गया है, उससे स्थान विशेष के बारे में विस्तृत जानकारी रखना आसान हो गया है। हमने पृथ्वी की गतियों की भी जानकारी प्राप्त की तथा जाना कि पृथ्वी की गतियाँ न केवल दिन-रात, बल्कि ऋतु-परिवर्तन के लिए भी जिम्मेदार है। इसके अलावा पृथ्वी पर जलवायविय विभाजन को भी जाना है। जलवायु के विभाजन के लिए जिम्मेदार कारकों को जाना। हमने तापमान, वायु, वायुमण्डल, वायुदाब एवं वायुमण्डल की आर्द्रता को भी जाना है। जलमण्डल तथा समुद्रविज्ञान की जानकारी प्राप्त की। इसके अंतर्गत हमने महासागरीय तल की विशेषताओं, सागरीय जल का खरापन, सागरीय जल परिसंचरण के रूप में सागरीय लहरें, धाराएँ एवं ज्वार-भाटा को जाना तथा सागरीय निक्षेप के संबंध में भी पढ़ा है। आशा है कि यह पाठ शिक्षार्थियों की जिज्ञासा शांत करने में अपनी अहम भूमिका निभाएगा।

1.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise):

1. भू–आकृति विज्ञान की अवधारणा क्या है ?

   What is the concept of geomorphology ?

2. अक्षांश तथा देशांतर रेखाओं से क्या समझते हैं ? महत्व बताएँ

   What do you mean about latitude and longitude ? State its importance.

3. पृथ्वी की गतियाँ को प्रभाव बताएँ।

   Describe the effect of earth movements.

4. तापमान तथा जलवायविक विज्ञान को समझाएँ।

   Explain the Temperature and climatology.

5. वायुमण्डल में वायुदाब तथा आर्द्रता की विवेचना करें।

   Discuis the wind-pressure and humidity in atmosphere.

6. जलमण्डल एवं समुद्र विज्ञान को विस्तार से समझाएँ।

   Give an account of Hydrology and oceanography.